सनातन धर्म में संस्कार परम्परा : विश्लेषण

दिनेश कुमार मील [1]

[1] **सहायक आचार्य, इतिहास, सुजस महाविद्यालय, बनेड़ा, भीलवाड़ा(राज.).**

ABSTRACT:

शरीर को पावन बनाने के लिये धार्मिक अनुष्ठान की विधि संस्कार है। संस्कार, मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार एवं पूर्णता का प्रतीक है। शास्त्रोक्त विधि से अनुष्ठित संस्कार मानव में मानवता प्रदान करते हुए उसे समाजोपयोगी बनाते है। व्यक्ति के जीवन में इन संस्कारों का आध्यात्मिक महत्व तो है ही परन्तु वैज्ञानिक महत्व भी है। संस्कार दोषमार्जन, अतिशयाधन, हीनांग पूर्ति रुप तीन गुणों से व्यक्ति का पूर्ण मानव की संज्ञा से विभूषित करता है।

KEYWORDS:

संस्कारों के प्रयोजन, उद्देश्य, संस्कारो की संख्या।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
29th March 2024	30th March 2024

विषय प्रवेश :-

लोहा जिस प्रकार खान से निकलता है, ठीक उसी प्रकार उसका उपयोग हम नही कर सकते क्योंकि वह अति-मलिन होता है। यदि उससे तलवार बनानी हो तो उसका संस्कार करना पड़ता है। संस्कार में तीन बाते अति महत्वपूर्ण है-

1. दोषमार्जन अर्थात् उसे साफ करना,

2. अतिशयाधान - उपयोगी बनाने के लिए कुछ विशेषता उत्पन कर देना,

3. हीनांगपूर्ति अर्थात् फिर उपयुक्तता में कोई त्रुटि हो तो अन्य पदार्थ को मिलाकर उसकी पूर्ति करना ही हीनांगपूर्ति है। यह समस्त बाते संस्कारो पर भी लागू होती है। गर्भाधान, जातकर्म, अन्नप्राशन आदि संस्कारों के द्वारा मानव का दोषमार्जन होता है। चूडाकरण, उपनयन आदि संस्कारों के द्वारा अतिशयाधान तथा विवाह, (अग्न्याधान) आदि संस्कारों के द्वारा हीनांगपूर्ति होती है। इस प्रकार संस्कारो के इन्ही तीन गुणों से मानव अपने जीवन को पूर्ण करता है तथा इस लोक में सुख शांति का अनुभव करते हुए, शान्ति से परलोक सुख का भी आनन्द लेता है।

सस्कारों का प्रयोजन :-

प्रत्येक कार्य का एक प्रयोजन अवश्य होता है। हम देखते हैं कि वेदों के भी आदेश वाक्यों को मानने के लिए तथा उसमें मनुष्य को प्रवृत्त होने के लिए प्रशंसा वाक्य ब्राहमणग्रंथों में भरे पड़े है तथा जिनका उपयोग या प्रयोजन मात्र विधि वाक्य की स्तुति या प्रशंसा करके मानव को उस कर्म में लगाना है। ठीक इसी प्रकार संस्कारो के भी प्रयोजन है -

(अ) लोकप्रिय प्रयोजन :- मानव समाज में प्राचीन काल से ही यह धारणा थी कि कुछ ऐसे भी अमंगल तत्व है जिनसे रक्षा करना हमारा परम दायित्व है, संस्कारो में अवांछित प्रभावों का निराकरण के लिए गृह सूत्रों में संस्कारों के अन्तर्गत अनेक साधनों का अवलम्बन करने का निर्देश मिलता है। जैसे - तत्कालीन समाज में अशुभ शक्तियों के प्रभाव से मुक्त रहने के लिए उन्हें बलि तथा भोजन दिया जाता था, जिससे वे तृप्त होकर बिना किसी प्रकार की क्षति पहुंचाए लौट जाए। गृहस्थ अपनी पत्नी और बच्चों की रक्षा के लिए सदा चिन्तित रहता था तथा भूत प्रेतादिको की निवृत्ति अपना परम कर्तव्य समझता था। जैसे स्त्री के गर्भिणी रहने के समय या शैशव काल मे बालक के उपर होने वाली बाधाओं के समय पिता कहता था कि शिशुओं पर आक्रमण करने वाले कूर्कुर सकुर्कूर शिशु को मुक्त कर दो। हे सीसर में तुम्हे बलि देकर अपनी स्तुति से प्रसन्न करना चाहता हूँ जिससे इस बालक का अनिष्ट दूर हो जाये। गृहस्थ देवताओं से भी अशुभ प्रभावों के निवारण के लिए प्रार्थना करता था। जिस प्रकार अवांछित प्रभावों के निराकरण के लिए संस्कार किये जाते थे ठीक उसी प्रकार अभीष्ट प्रभावों के आर्कषण के लिए भी संस्कारों का शास्त्रों में विधान बताया गया है।

प्राचीन जनों का विश्वास था कि जीवन का प्रत्येक क्षण किसी न किसी देवता द्वारा अधिष्ठित है। अतः अवसर उपस्थित होने पर उस देवता की स्तुति या अराधना अवश्य की जाती थी। जैसे गर्माधान के समय विष्णु प्रधान देवता है, विवाह के समय, प्रजापति और उपनयन के समय बृहस्पति इत्यादि। तत् तत् कालो के उपस्थित होने पर इनकी पूजा की जाती थी। यही नहीं शुभ वास्तुओं के स्पर्श से भी वे मंगल परिणाम की आशा करते थे। जैसे सीमन्तोनयन संस्कार के समय उदुम्बर वृक्ष की शाखा का पत्नी के गले से स्पर्श कराया जाता था। क्योंकि यह विश्वास था कि उसके स्पर्श से स्त्री में उर्वरता की क्षमता आयेगी। इसी प्रकार सन्तति प्रजनन के लिए पत्नी की नाक के दाये छिद्र में दूर व्यापी जड़ वाले विशाल वटवृक्ष के कोपल का रस छोड़ा जाता था।

(ब) सांस्कृतिक प्रयोजन :- आचार्य मनु कहते है कि गर्भहोम जात कर्म, चूड़ा कर्म और मौंजीबन्धन संस्कार के अनुष्ठान से द्विजो के गर्भ तथा बीज संबंधी दोष दूर हो जाते है। प्राचीनजनों का विश्वास था कि बीज और गर्भाधान, अपवित्र अर्थात् अशुद्ध होता है। इनकी पवित्रता जातकर्म आदि संस्कारो से ही सम्भव है। आचार्य अंगिरा भी कहते है -"चित्र निर्माण करते समय विविधि रंगों की आवश्यकता होती है तत् तद् अंगो के निर्माण के लिए ठीक उसी प्रकार विविध संस्कारों के द्वारा ही मानव की पूर्णता सम्पन होती है"। आचार्य शंख लिखते है कि संस्कारों से संस्कृत आठ आत्म गुणों से युक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक में पहुंच कर ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेता है, जिससे वह कभी नही गिरता है। इससे यह सिद्ध होता है कि संस्कारों का प्रयोजन स्वर्ग तथा मोक्ष लाभ भी था हो भी क्यों न, मोक्ष को तो जीवन का चरम उद्देश्य हमारे ऋषियों ने माना है। मोक्ष प्राप्ति से पहले स्वरूप ज्ञान, तत्वमसि आदि महावाक्यों के उपदेश से होता है, फिर 'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध होता है। इसके बाद जीव संसार से मुक्त होकर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त करता है। क्योंकि मोक्ष में भी कारण ज्ञान ही है।

(स) नैतिक प्रयोजन :- आचार्य गौतम के अनुसार संस्कारो का नैतिक प्रयोजन ही सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने चालीस संस्कारों की गिनाने के पश्चात् आत्मा (मनुष्य) के आठ गुणों का उल्लेख किया है- (क) दया (ख) क्षमा (ग) अनुसूथा (घ) शौच (ड़) शमा (च) उचित व्यवहार (छ) निरीहता (ज) निर्लोभता। उनके अनुसार जिस व्यक्ति ने 40 संस्कारों का अनुष्ठान तो किया है किन्तु आठ आत्मगुणों का जिसमें अभाव है उसके सारे 40 संस्कार निरर्थक है। व्यक्ति पढ़ लिख कर साक्षर तो हो जाता है पर नैतिक दायित्वों के अभाव में शुद्ध रूप से मनुष्य भी नहीं

कहा जा सकता है। इसीलिए संस्कारों का परम प्रयोजन नैतिक गुणों की प्राप्ति से है जिन्हें वर्तमान समाज को सख्त आवश्यकता है।

(द) व्यक्तित्व का निर्माण और विकास :- शिशु के जन्म होने पर आयुष्य तथा प्रज्ञाजनन कृत्यों का अनुष्ठान किया जाता था और नवजात शिशु को समान दृढ एवं परशु की तरह शत्रुनाशक, बुद्धिमान तथा चरित्रवान होने का आ आर्शीवाद दिया जाता था।

चूडाकर्म या मुण्डन संस्कार के पश्चात जब शिशु बालक अवस्था में पहुंच जाता तो उसे बिना ग्रंथों के अर्थात् श्रुति परम्परा से अध्ययन तथा विद्यालय के कठोर नियन्त्रण में ही उसके कर्तव्यों तथा उतरदायित्वों से उसका परिचय कराया जाता था उपनयन तथा अन्य शिक्षा संबंधी संस्कार ऐसी सांस्कृतिक अग्नि का काम करते थे, जिन् में तपाकर बालक जे ने अपनी अभिलाषाओं, इच्छाओं को पिघलाकर अभीष्ट सांचे में ढाल दिया जाता था और अनुशासित किन्तु प्रगतिशील और परिष्कृत जीवन व्यतीत करने के लिए उसे तैयार किया जाता था। इन संस्कारो के नियमो को कठोर बनाने की अनिवार्यता का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को संस्कृत एवं चरित्र की दृष्टि से समाज का एक रूप विकास तथा उसे समान आदर्श से अनुप्राणित करना था, भारतीयों का दृढ विश्वास था कि सविधि संस्कारों के अनुष्ठानो से वे जैविक दैहिक बन्धन से मुक्त होकर मृत्यु सागर की पार कर लेते हैं। इसी लिए ईशोपनिषद में कहा गया है- " जो विद्या तथा अविद्या दोनों को जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पारकर विद्या से अमरत्व को प्राप्त कर लेता है”। यहां अविद्या का अर्थ संस्कार, यज्ञादि अनुष्ठानों से है तथा विद्या का तात्पर्य देवता ज्ञान रुपी विद्या।

इस प्रकार यहाँ विविध संस्कारो से व्यक्ति की चारित्रिक शुद्धि तथा अन्तःकरण की शुद्धि होती है। यही इसका आध्यात्मिक महत्व है।

संस्कारो की संख्या :-

मुख्य रूप से संस्कारो का उद्भव गृह सूत्रों से हुआ है। इसी क्रम से सर्वप्रथम आश्वलायन गृहसूत्र जो कि ऋगवेद से संबधित है। इसमें चार अध्याय है जिनमे संस्कारो, कृषिकर्म एवं पितृमेघ आदि धार्मिक कार्यो का प्रधान रुप से वर्णन मिलता है। आश्वलायन गृहसूत्र में 11 संस्कारो का वर्णन मिलता है जो निम्नलिखित है।

1. विवाह 2. गर्भाधान 3. पुंसवन 4. सीमन्तोन्नयन 5. जातकर्म 6. नामकरण 7. चूडाकरण 8. अन्नप्राशन 9. उपनयन 10. समावर्तन 11. अंत्येष्टि

बोधायन गृह सूत्र जो कि कृष्ण यजुर्वेद से सबंधित है। इस गृहसूत्र में 13 संस्कारो का वर्णन मिलता है जो निम्नलिखत है - 1. विवाह 2. गर्भाधान 3. पुंसवन 4.सीमन्तोन्नयन 5. जातकर्म 6. नामकरण 7. उपनिष्कमण 8. अन्नप्राशन 2. चूडाकर्म 10. कर्णवेध 11. उपनयन 12. समावर्तन 13. पितृमेधा। यह प्रायः दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है। उत्तर भारत मे शुक्ल यजुर्वेद की प्रधानता है जिसके गृहसूत्र का नाम पारस्कर गृह सूत्र है, इसी गृहसूत्र में वर्णित संस्कारो का अनुपालन उत्तर भारतीयों द्वारा अक्षरक्षः किया जाता है। पारस्कर गृहसूत्र के रचियता महर्षि पारस्कर है। इसमें प्रधान रूप से 13 संस्कारो का वर्णन प्राप्त होता है।

संस्कारों की संख्या के क्रम में हमें अभी तक 11,13, 25, 40 आदि संख्या गृहसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृतिग्रंथों के आधार पर निर्धारित की परंतु वर्तमान समाज में 16 संस्कारों की प्रसिद्धि प्रायः लोगो से सुनी है। उसका मूल क्या है? इसका उत्तर हमें व्यास स्मृति में मिलता है।

महर्षि व्यास के अनुसार संस्कार मुख्य रुप से सोलह (16) हैं -

गमर्माधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।

नामक्रिया निष्क्रमोडन्नप्राषनं वपनक्रिया ।।

कर्णवेधो व्रतादेषो वेदारम्भ क्रियाविधि।

केशान्तः स्नान उद्धाहो विवाहोग्नि परिग्रह।

त्रेताग्नि संग्रहश्चैव संस्कारा: षोडश स्मृता।

इस प्रकार संस्कारो की संख्या में भेद होने पर यह कैसे निश्चित होगा कि संस्कार कितने है तथा हमे कितने संस्कारों का पालन करना चाहिए। इस प्रश्न के लिए महर्षि अंगिरा का यह वचन अत्यंत प्रामाणिक है-"अपने-अपने गौत्र परंपरा शाखा के अनुसार अपने अपने गृहसूत्र में जितने संस्कार वर्णित है उन्हीं संस्कारों को करना चाहिये"।

आचार्य वशिष्ट ने स्पष्ट लिखा है- "जो अपनी शाखा के संस्कारो को छोड़कर दूसरे की शाखा में वर्णित संस्करों को करता है या करवाता है वह शाखाण्ड़ दोष युक्त हो जाता है"।

इन संस्कारों के अधिकारी लोग कौन-कौन है। इसके लिए याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट रूप से लिखा है- ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य को द्विज कहा जाता है। अत: इनका गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक का संस्कार मन्त्रपाठ पूर्वक करना चाहिये। शूद्र तथा स्त्रियों का जाकमोद्दि संस्कार मंत्र रहित करना चाहिये। स्त्रियों का विवाह मन्त्र सहित तथा शेष संस्कार कुल परम्परानुसार मन्त्र रहित होगें।

सारांश:-

आज के समय में जो अत्यंत आवश्यक है वह है चरित्र निर्माण एवं नैतिक ज्ञान जो कि संस्कारों से ही सुलभ है। संस्कारों के तीन गुणों से मानव अपने जीवन को पूर्ण करता है तथा इस लोक में सुख शान्ति का अनुभव करते हुऐ शान्ति परलोक सुख का भी आनन्द लेता है। संस्कार दोषमार्जन, अतिशयाधान, हींनागपूर्ति रूप के तीन गुणों से व्यक्ति को पूर्णमानव की संज्ञा से विभूषित करता है।

REFERENCES

1. डॉ राजबली पाण्डेय : हिन्दू संस्कार

2. आचार्य पारस्कर : पारस्कर गृह सूत्र

3. मित्रमिश्र : वीरमित्रोदय